International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 21-22

भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों में ईश्वर की अवधारणाएँ

Amit Kumar Singh
Research Scholar, Department of Philosophy, University of Allahabad, Uttar Pradesh, India

प्रस्तावना

ईश्वर वह सर्वोच्च पारलौकिक सत्ता है जिसे इस जगत् का नियन्ता व सृष्टा माना जाता है। संसार के लगभग सभी आस्तिक दर्शन व धर्मों में ईश्वर की परिकल्पना मौजूद है। अधिकांश धर्मों में ईश्वर की परिकल्पना ब्रह्माण्ड के सृष्टा के रूप में की जाती है। संस्कृत की ईश् धातु का अर्थ है– नियंत्रित करना। इस प्रकार मूलरूप में यह शब्द नियन्ता के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसी धातु से समानार्थी शब्द ईश् व ईशिता बने हैं। भारतीय दर्शन में ईश्वर की अवधारणा वैदिक काल से भी पूर्व में विद्यमान रही है। समय के साथ–साथ ईश्वर के स्वरूप व अवधारणा में परिवर्तन हुआ है। भारतीय दर्शन तथा धर्म में ईश्वर की प्रकृतिवादी अवधारणा, निर्वैयक्तिक अवधारणा और व्यक्तिपूर्ण अवधारणा पायी जाती है।

प्रकृतिवादी अवधारणा

प्रकृतिवादी धारणा का अर्थ है ईश्वर को प्रकृति की विभ्भिन्न शक्तियों के रूप में देखना। इसमें मनुष्य ने प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को ईश्वर का दर्जा दिया है। भारतीय धर्म या दर्शन ही नही बल्कि विश्व के कई समाजों में ईश्वर की प्रकृतिवादी धारणा मिलती है जैसे– जापान के शिन्तो धर्म में, बेबिलोनिया, मिस्र तथा रोम इत्यादि के धर्मों में। भारतीय दर्शन में वैदिक काल के आरम्भ में इस धारणा का विकास दिखायी देता है। इस समय प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को ईश्वर मानकर पूजा गया। प्रकृतिवादी धारणा समान्यतः अनेकेश्वरवादी होती हैं उदाहरणस्वरूप– वैदिक धर्म में इन्द्र को वर्षा का देवता, सूर्य को प्रकाश का देवता, अग्नि को यज्ञ का देवता तथा सोम को स्फूर्ति का देवता आदि की पूजा की जाती थी।

प्रकृतिवादी धारणा अनेकेश्वरवाद को मानने के कारण कुछ तार्किक प्रश्नों के समक्ष उलझ जाती है जैसे– ईश्वर के अनेक होने के कारण उसकी शक्ति विभाजित हो जाती है, अतः वह सर्वशक्तिमान नहीं रह पाता। इसी प्रकार की समस्या ईश्वर की सर्वज्ञता तथा सर्वव्यापकता आदि गुणों के साथ आती है। वैदिक धर्म में इस समस्या का समाधान एक विशेष तरीके से किया गया है। वैदिक धर्म में प्रायः एक वाक्य का प्रयोग किया गया–'कस्मै देवाय हविषा विधेम्' अर्थात् मुझे किस ईश्वर की पूजा करनी चाहिए। इस वाक्य का भाव यह था कि कौन सा ईश्वर सभी ईश्वरों में ऊँचा है? वैदिक काल के लोगों ने इस समस्या का समाधान यह किया कि वे जब जिस ईश्वर की पूजा करते थे, उसी को सर्वोच्च ईश्वर मान लेते थे। एकाधिदेववाद की इस प्रवृत्ति को एकत्व की दिशा में जाने कि सहज प्रवृत्ति की अचेतन अभिव्यक्ति मानते हुए मैक्समूलर ने इसे बहुदेववाद और एकेश्वरवाद के मध्य एक निश्चित सोपान माना और इसे विकल्पेश्वरवाद कहा तथा ब्लूमफील्ड ने इसे अवसरवादी एकेश्वरवाद कहा है। आगे चलकर वैदिक परम्परा में अनेकेश्वरवाद का स्थान एकेश्वरवाद ने ले लिया। कुछ और आगे जाने पर उपनिषदों में एकेश्वरवाद एकवाद में परिवर्तित हो गया जिसमें माना गया कि एक ही परम् तत्व की सत्ता है, जीव और जगत् भी इससे भिन्न नहीं हैं। उपनिषदों के महावाक्य जैसे 'सर्व खलु इदं ब्रह्म' तथा 'अहं ब्रह्मस्मि' इसी एकवादी मानसिकता का प्रतिपादन करते हैं।

निर्वैयक्तिक अवधारणा

ईश्वर की निर्वैयक्तिक धारणा के अनुसार ईश्वर की व्याख्या गुणों के माध्यम से नहीं की जा सकती। इसका तात्पर्य यह नही है कि ईश्वर गुणहीन है बल्कि ईश्वर गुणातीत है। गुणों के माध्यम से ईश्वर की व्याख्या करने पर कुछ गुणों का आरोपण ईश्वर हो पाएगा और कुछ गुण छूट जाएंगे और ईश्वर सीमित हो जाएगा। इसीलिए कई दार्शनिक ईश्वर की व्याख्या निर्गुण रूप में करते हैं। निर्गुण कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर में सभी गुण विद्यमान हैं। हम अपने दैनिक अनुभवों में जितने भी गुणों को जानते हैं वे सभी हमारी जगत् सम्बन्धी अनुभवों पर आधारित हैं। चूँकि परम् तत्व इस जगत् से परे है। इसलिए हम जितने गुणों को जानते हैं, ईश्वर उन सबसे परे है। भारतीय दर्शन के कुछ सम्प्रदायों में ईश्वर के निर्गुण रूप की अवधारणा मिलती है लेकिन सगुण ईश्वर को मानने वाले दार्शनिक निर्गुण ईश्वर को नहीं मानते क्योंकि निर्गुण ईश्वर उनकी धार्मिक भावनाओं का आलम्बन नहीं बन पाता।

भारतीय दर्शन व धर्म में निर्गुण ईश्वर की धारणा कई स्थलों पर दिखाई देती है जो इस प्रकार है– सभी उपनिषदों का विवेच्य विषय ब्रह्म या आत्मा का स्वरूप है। आत्मा एवं ब्रह्म उन दो स्तम्भों के समान हैं जिनपर उपनिषदों की सम्पूर्ण विचाारधारा टिकी है। 'वृहन्तो हि अस्मिन् गुणा इति ब्रह्म' इसके अनुसाार ब्रह्म से तात्पर्य उस परम् सत्ता से है जिसकी सत्ता एवं अनन्त शक्ति पर विश्व के सभी पदार्थों का अस्तित्व एवं संचालन निर्भर है। उपनिषदों में ब्रह्म का वर्णन 'नेति–नेति' पद्धति में किया गया है। निर्गुण धारणा का पहला संकेत उपनिषदों में ही मिलता है। बृहदारण्यकोपनिषद् ब्रह्म का पूर्ण निषेधात्मक वर्णन करता है। 'नेति–नेति' का अर्थ केवल यह है कि ब्रह्म अलक्षण और अनिर्वाच्य है। जो कुछ भी वर्णन उसके विषय में किया जाता है वह उससे बाहर ही रहता है। ईश्वर के निर्गुण स्वरूप का दूसरा स्पष्ट वर्णन शंकर के अद्वैतवाद में दिखाई पड़ता है। शंकर का ब्रह्म पारमार्थिक रूप से निर्गुण है। निर्गुण कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्धि द्वारा वर्णित कोई भी रूप उसका वास्तविक स्वरूप नहीं हो सकता। शंकर का ब्रह्म सभी भेदों से रहित है वह सजातीय, विजातीय एवं स्वगत् सभी भेदों से रहित है। किसी वस्तु की व्याख्या भेदों के आधार पर ही हो सकती है और शंकर का ब्रह्म सभी भेदों से रहित, निर्गुण, निर्विशेष सत्ता है। शंकर का ब्रह्म अनिर्वचनीय है। ब्रह्म का विवेचन निषेध मुख से ही हो सकता है। किसी वस्तु निर्वचन बुद्धि की चार कोटियों तथा व्याकरणीय भाषा के माध्यम से होता है। ब्रह्म बुद्धि की चारों कोटियों से परे है। आधुनिक पाश्चात्य विचारक स्पिनोजा भी ईश्वर

को निर्गुण एवं अनिर्वचनीय मानते हैं। शंकर ब्रह्म को 'सत् चित् आनन्द' कहते हैं इसी को श्रुति में 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' कहा जाता है। ब्रह्म को सत् कहने का अर्थ शंकर के अनुसार सिर्फ इतना है कि वह असत् नहीं है।

भारतीय परम्परा में सन्त परम्परा के भक्त ईश्वर को निर्गुण कहते थे। इस परम्परा के सबसे महत्वपूर्ण विचारक सन्त कबीर हैं जिन्होंने ईश्वर को निर्गुण कहा। उनकी स्पष्ट घोषणा है कि 'निर्गुण राम जपहु रे भाई'। यहाँ पर राम कबीर के निर्गुण ईश्वर के रूप में हैं न कि तुलसीदास के सगुण राम के रूप में। सिक्ख धर्म में भी ईश्वर को निर्गुण कहा गया है। गुरूनानक देव (जो भक्ति आन्दोलन की सन्त परम्परा से जुड़े हुए थे) ने सन्त परम्परा से प्रभावित होकर परम् तत्व की व्याख्या निर्गुण रूप में की है।

व्यक्तिपूर्ण अवधारणा

ईश्वर की व्यक्तिक या सगुण धारणा का अर्थ है कि ईश्वर का निर्वचन कुछ गुणों के माध्यम से की जा सकती है। भारतीय दर्शन में चार्वाक, जैन, बौद्ध, सांख्य तथा मीमांसा सम्प्रदाय में ईश्वर की धारणा स्वीकार नहीं की जाती जबकि न्याय–वैशेषिक, योग तथा वेदान्त दर्शन ईश्वर के सगुण रूप को स्वीकार करते हैं। अद्वैतवेदान्त ईश्वर की धारणा को स्वीकार करता है लेकिन पारमार्थिक रूप से उसे निर्गुण कहता है और व्यावहारिक रूप से सगुण।

न्याय–वैशेषिक का ईश्वर जगत् का आदि सृष्टा, पालक और संहारक है। वह सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ है। ईश्वर जगत् का मात्र निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं। इसके अतिक्ति न्याय दर्शन का ईश्वर जीवों के कर्मो का प्रयोजक कारण भी है। न्याय दर्शन का ईश्वर शरीरधारी है जो सत् , चित्, आनन्द से परिपूर्ण है। ईश्वर में अनन्त गुण हैं लेकिन नैयायिकों ने ईश्वर में छः गुणों की चर्चा की हैं जिन्हें 'षडैश्वर्य' कहा गया है। ये छः गुण हैं– अधिपत्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान एवं वैराग्य। न्यायसिद्धान्त मुक्तावली में ईश्वर के आठ गुण– संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, बुद्धि, इच्छा और प्ररूत्न गिनाए गए हैं।

सांख्य दर्शन में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है किन्तु योग दर्शन में ईश्वर की अवधारणा को जोड़कर सांख्य दर्शन की तत्वमीमांसा को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। योग दर्शन ने ईश्वर को स्वरूपतः पुरुष के समान बताया है। योग दर्शन के अनुसार 'क्लेशकर्म–विपाकाशयैरपराभृष्टो पुरुषविशेष ईश्वरः' अर्थात् अविद्या, अस्मिता आदि क्लेशों से, कर्मों के पाप पुण्य आदि फलों से तथा कर्मों के संस्कारों से अप्रभावित पुरुष विशेष ईश्वर है। बद्ध, मुक्तसम, मुक्त तथा सदामुक्त इन चार प्रकार के पुरुषों में ईश्वर सदा मुक्त है। पुरुषों की अन्य श्रेणियों में अनेक पुरुष आते हैं जबकि सदामुक्त श्रेणी में एक ही पुरुष विशेष है और वही ईश्वर है। ईश्वर काल की सीमा से परे है इसी को योगसूत्र में 'कालानवच्छिन्न' कहा गया है। योग दर्शन का ईश्वर सर्वज्ञ है। इसके अतिरिक्त ईश्वर को नित्य तथा पूर्ण स्वभाव वाला बताया गया है। योगसूत्र में ईश्वर के कुछ नैतिक गुणों की चर्चा की गई है। जैसे– वह करुणामय है और वह चाहता है कि सभी पुरुष बन्धन से मुक्त हो जाएं इसके लिए वह सृष्टि के आरम्भ में सभी पुरुषों को नैतिक उपदेश देता है।

वैष्णववेदान्त

ईश्वर की सगुण धारणा का सबसे प्रबल समर्थन वैष्णववेदान्त दर्शन में दिखाई देता है। इसके अन्तर्गत रामानुज का विशिष्टाद्वैत दर्शन, वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद तथा मध्व का द्वैतवाद आदि कुछ वैष्णववेदान्ती सम्प्रदाय हैं। जिसमें ईश्वर के सगुण रूप का वर्णन मिलता है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण विचारधारा रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद की है। शुद्धाद्वैतवाद तथा द्वैताद्वैतवाद में भी ईश्वर को अत्यधिक महत्व दिया गया है। लेकिन मध्व के द्वैतवाद में ईश्वर का महत्व कुछ कम हुआ है क्योंकि वहाँ ईश्वर को सिर्फ निमित्त कारण माना गया है उपादान कारण नहीं।

रामानुज ने शंकर के निर्गुण ब्रह्म का खण्डन करके ब्रह्म के सगुण रूप का समर्थन किया है। रामानुज धर्मशास्त्रों के समान अपने ईश्वर को सभी गुणों से युक्त कहते हैं। उपनिषद् उसे सत्यं, ज्ञानम् और अनन्तम् कहती है। रामानुज के अनुसार सत्य, ज्ञान और आनन्द ब्रह्म के गुण हैं, उसके स्वरूप नहीं, जैसा कि शंकर मानते हैं। ईश्वर सभी तात्विक गुणों से युक्त हैं। वह स्वतंत्र, स्वयंभू तथा निरपेक्ष है क्योंकि उससे भिन्न कोई सत्ता है ही नहीं। देश और काल भी ईश्वर के अंश से ही उत्पन्न होते हैं। रामानुज ईश्वर को सर्वशक्तिमान तथ सर्वज्ञ मानते हैं। वह उसे सर्वव्यापी भी मानते हैं क्योंकि ईश्वर अन्तर्यामी रूप से जगत् के कण–कण में मौजूद हैं। रामानुज भागवत् धर्म के प्रभाव में ईश्वर को 'विष्णु' कहते हैं। वे विष्णु के पाँच रूपों की चर्चा करते हैं जो इस प्रकार हैं– परा, व्यूहरूप, विभवरूप, अन्तर्यामी रूप और अर्चारूप। परा ब्रह्म की सर्वोच्च स्थिति है। वह इस रूप में नारायण या वासुदेव हैं जो वैकुण्ठ लोक में निवास करते हैं। ईश्वर व्यूहरूप अपने भक्तों पर दया दिखाने के लिए धारण करता है। व्यूहरूप में वह चार रूपों में प्रकट होता है– वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध। ईश्वर जगत् में नैतिकता की स्थपना के लिए विभवरूप धारण करता है। इस रूप में वह राम, कृष्ण आदि के रूप में अवतार लेता है।

रामानुज के समान ही वल्लभाचार्य तथा निम्बार्क ने भी ईश्वर के सगुण रूप की उपासना की है। इन सभी दार्शनिकों के ईश्वर की धारणा लगभग समान है। तीनों दार्शनिक ईश्वर को जगत् का निमित्त और उपादान दोनों कारण मानते है। मध्वाचार्य की व्याख्या इनसे कुछ भिन्न है क्योकि उन्होने ईश्वर को जगत् का सिर्फ निमित्त कारण माना है और प्रति को उपादान का कारण माना है।

अन्ततः हम देखते है कि पारम्परिक भारतीय सम्प्रदायों में सगुण ईश्वर का सबसे ठोस समर्थन वैष्णववेदान्त दर्शन में मिलता है, प्रमुख रूप से रामानुज के दर्शन में। अन्य भारतीय दर्शनों पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि वहाँ ईश्व्र की भूमिका स्वीकार तो की गई है किन्तु उसका महत्व काफी कम है। कुछ दार्शनिक सम्प्रदाय जैसे– चार्वाक, जैन,बौद्ध, सांख्य और मीमांसा ईश्वर की धारणा को स्वीकार ही नहीं करते और न्यायवैशेषिक तथा योगदर्शन ईष्वर के सगुण रूप को स्वीकार तो करते हैं किन्तु जो महत्व ईश्वर को मिलना चाहिए वो उन्हें नहीं देते।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Radhakrishnan: Indian Philosophy, 1, 89.
2. H.D. Griswold: The Religion of the Regveda, 347-48.
3. Max Muller: Six Systems of Indian Philosophy.
4. योगभाष्य, 3/50–51।
5. योगसूत्र, 1/26।
6. न्याायकुसुमांजली, 5/1।
7. न्यायभष्य, 4/1/21।
8. ब्रह्मसूत्रभाष्य, 2/1/14।
9. तैत्तरीयउपनिषद् 2/1।
10. वेदार्थसंग्रह, पृ0, 17।
11. श्रीभाष्य 1/4/9।
12. न्यायसुधा, पृ0, 194।